INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCHES IN SOCIAL SCIENCES AND INFORMATION STUDIES
© VISHWASHANTI MULTIPURPOSE SOCIETY (Global Peace Multipurpose Society) R. No. MH-659/13(N)
www.vmsindia.org

भूमंडलीकरण के दौर में भारतीय परिवार : परिवर्तन एवं विघटन
(एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

Kalpana Kiran Patole
Department of Hindi, GKG College, Kolhapur – 416012, (MS) India
kalpanapatole707@gmail.com

सारांश –

भारतीय मनीषियों ने परिवार को बडे व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया है। इन्होंने परिवार से केवल पति–पत्नी तथा उनकी संतान का ही अर्थ ग्रहण नहीं किया बल्कि समस्त प्राणि–मात्र एवं छोटे –छोटे जीवधारियों को भी परिवार के सदस्य के रूप में स्वीकार कर 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को चरितार्थ किया है। एक आदर्श भारतीय गृहस्थ समस्त जीवधारियों के लिए अपने भोजन का कुछ अंश निकालकर जीव –यंज्ञ संपत्र करता है। इस तरह जीवन में सभी प्रकार के ऋणों से उऋण होने के लिए देव, ऋषी, पितृ, अतिथी, जीव इन पंच यज्ञों की पूर्ति करता है। इस प्रकार मनुष्य के पारिवारिक दायित्त्वों के विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि गीता के निष्काम कर्मयोग का सर्वोत्तम स्थान परिवार है। परंतु भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न औद्योगीकरण, नगरीकरण, स्त्री–शिक्षा, धन–प्रचुरता और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के कारण भारतीय पारिवारिक भावना की व्यापकता संकुचित होती जा रही है। परिवार विपत्र और विघटित होते जा रहें हैं। एसी अवस्था में भी हमारे परंपरागत भारतीय संस्कार अर्थवाद, भौतिकवाद एवं अति भोगवृत्ति के लिए लालायित न होकर सात्विक जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करते हैं। यह निश्चित ही विश्व समाज के लिए शुभ संकेत है।

प्रस्तावना :

परिवार, समाज की एक आधारभूत एवं सार्वभौमिक संस्था है। राष्ट्र तथा समाज के सर्वांगीण विकास की प्राथमिक अवस्था परिवार है। दोनों का निर्माण परिवार से ही होता है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों तथा भौतिक आवश्यकताओं ने परिवार को जन्म दिया। एलमर वैरेन्स के शब्दों में, ''अनेक प्रेरकों, आवश्यकताओं और क्रियाओं के फलस्वरूप मानव – प्रजाति ने अत्यंत सुंदर सामाजिक संगठन, सामाजिक विश्वासों, रीतिरिवाजों, विचारों और संस्थाओं का निर्माण किया है।''[1] इनमें परिवार संस्था प्रमुख है, जिसका मानव समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। हरिदत्त वेदालंकार कहते है, ''परिवार मानव जाति में आत्मरक्षण, वंशवर्धन और जातीय जीवन में सातत्य को बनाए रखने का प्रधान साधन है।''[2] मनुष्य मरण–धर्मा है, किंतु मानव जाति अमर है। अर्थात व्यक्ति भले ही मर जाते हैं, परंतु परिवार और विवाह द्वारा संतानोत्पत्ति करके मानव समाज अमर रहता है। इस प्रकार सामाजिकरण की प्रक्रिया परिवार में ही होती है। व्यक्ति विकास के लिए आवश्यक सामाजिक गुणों की शिक्षा सबसे प्रथम परिवार से शुरू होती है। इसलिए परिवार को सामाजिक जीवन की शाश्वत पाठशाला कहा गया है। परिवार में प्रेम, बंधुता, सहजीवन, सहयोग, सहनशीलता, कर्तव्य आदि सामाजिक गुणों का विकास होता है। साथ ही सेवा, त्याग, श्रध्दा, कर्तव्यनिष्ठा, प्रामाणिकता, निस्वार्थ वृत्ति आदि नैतिक गुणों के संस्कार परिवार में किए जाते हैं। यही संस्कार परिवार तथा समाज की भी रक्षा करते है।

मानव समाज की संपूर्ण संरचना परिवार पर आधारित है। एक प्रमुख सामाजिक ईकाई के रूप में परिवार विश्व की प्रत्येक संस्कृति में विद्यमान है। परिवार विश्व की परंपरागत, सार्वकालिक, आधारभूत, बहुउद्देश्यपूर्ण, सामाजिक संस्था है, जो हर भूभाग में प्रचलित है। परिवार का व्यक्तित्व से अनिवार्य संबंध है। परिवार में ही व्यक्ति के सामाजिक संबंधों का विकास होता है। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि परिवार व्यक्ति को सामाजिक जीवन के लिए तैयार करता है। अतः समाज के लिए परिवार अनिवार्य है।

भारतीय तथा पाश्चात्य समाजशास्त्री, मानवशास्त्री तथा साहित्यकारों ने सदस्यत्व, आकार एवं उद्देश्य के आधार पर विभिन्न रूपों में परिवार को परिभाषित किया है। इनकी दृष्टि से, सामाजिक इकाई के रूप में परिवार स्त्री–पुरूष का एक समूह है, जो विवाह, रक्त या गोद के संबंधों के आधार पर निर्मित होता है। अतः यह समूह आर्थिक सहयोग एवं प्रजोत्पादन में अपना योगदान देकर समाज को विस्तृत एवं जीवित रखने का कार्य करता है, साथ ही समाज को अमरत्व प्रदान करता है। परिवार का सामान्य उद्देश मानव आवश्यकताओं की पूर्ति एवं मानव जाति को कायम रखना है। विश्व के समस्त देशों मे परिवार मुख्य रूप से कामेच्छा की पूर्ति का साधन है। परंतु भारतीय परिवारों का उद्देश्य केवल कामेच्छा की पूर्ति या भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होकर इसका उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति है। इन चार पुरूषार्थों की पूर्ति गृहस्थाश्रम में करना महत्वपूर्ण है। गृहस्थाश्रम यह मोक्ष प्राप्ति के लिए एक

साधन है। इसी कारण स्मृतीकारों ने इसे अन्य सभी आश्रमों से श्रेष्ठ माना है।

परिवार, एक सार्वभौमिक संस्था है जो विश्व के प्रत्येक समाज में पाई जाती है। इसमें वैवाहिक बंधन, रक्त संबंध, सामान्य निवास स्थान, वंशावली, आर्थिक तथा सामाजिक आधार आदि मूलभूत लक्षण है। जिससे परिवार का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। यह लक्षण इतने सार्वभौम है, कि विश्व के सभी परिवार इन पर आधारित होते हैं। सभी परिवारों का स्वरूप एक जैसा नहीं होता, वह परस्पर भिन्न भी पाया जाता है। परिवार एक समूह जरूर है। पर अन्य समूहों से उसका स्वरूप भिन्न है। परिवार संस्था का यह महत्वपूर्ण स्थान अब तक अन्य किसी भी संस्था ने पूर्ण रूप से नही लिया है। मनुष्य जीवन तथा समाज जीवन को सुनियोजित तथा सुसंगठित बनाने के लिए परिवार अनेक मौलिक एवं परंपरागत कार्य संपादित करता है। जिससे मनुष्य ने असभ्य युग से सभ्यता के युग में प्रवेश किया है। इसी कारण सामाजिक प्रक्रिया में परिवार को अत्याधिक महत्व प्राप्त हुआ है। परिवार के महत्त्वपूर्ण कार्य है, यौन इच्छाओं की पूर्ति, संतानोत्पति, बच्चों का पालन–पोषण, भोजन, वस्त्र एवं निवास व्यवस्था इसके साथ साथ मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक, राजनैतिक, रक्षात्मक, धार्मिक, सांस्कृतिक कार्य आदि। इन कार्यों से स्पष्ट होता है कि समाज एवं राष्ट्र की दृष्टि से परिवार अत्यंत महत्वपूर्ण संस्था है।

परंतु भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में समाज में बड़ी तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे है। परिवार भी इन परिवर्तनो से अछुता नही रहा है। आधुनिक सभ्यता के परिणामस्वरूप आदर्शों, मूल्यों, भावनाओं, विचारों आदि में तेजी से विघटन हो रहा है। आज के परिवारों में आधुनिक विचारों और परंपराओं की दृष्टि से संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है। इसके प्रमुख कारण निम्न है –

1. औद्योगीकरण तथा नगरीकरण :–

यांत्रिक अविष्कार और नयी यंत्रसामग्री के कारण खेती में मनुष्य बल कम लगने लगा। तो दूसरी ओर परिवार के सदस्यों की संख्या में निरंतर वृध्दि होने के कारण परिवार के सभी सदस्यों का परंपरागत कृषि पर गुजारा होना मुश्किल हो गया। फलस्वरूप परिवार के कुछ सदस्यों को गाँव छोड़कर शहर में जाकर अन्य उद्योगों में कार्य करने के लिए विवश होना पड़ा। परिवहन, संचार तथा यातायात के साधनों की प्रगति ने इस कार्य को और बढ़ा दिया। परिणामस्वरूप नगरों की आबादी बढ़ने लगी, जिसने संयुक्त परिवारों का विघटन तथा आवास की समस्या को पैदा किया। ''डॉ.राजनाथ शर्मा के विचार यहाँ दृष्टव्य है, ''धन कमाने के लिए ग्रामीण देशों से लोग आकर नगरों में बसने लगे है, जिससे नगरों की आबादी बढ़नी शुरू हो गई और रहने की समस्या दिनोंदिन उग्र होती चली गई।''[3] परिणामस्वरूप औद्योगीकरण, नगरीकरण, यांत्रिक अविष्कार के परिणामस्वरूप उत्पन्न प्रतिस्पर्धात्मक व्यस्त जीवन ने व्यक्ति को सीमित परिवार रखने पर मजबूर कर दिया है। ''ज्यों–ज्यों व्यक्ति का सामाजिक क्षेत्र विस्तृत होता गया त्यों–त्यों उसका पारिवारिक क्षेत्र संकुचित होता गया। विश्व–समाज का स्वप्न देखनेवाला मानव लघु परिवार के सृजन में संलग्न है।''[4] इसप्रकार औद्योगीक क्रांति, नगरों का आकर्षण आदि के कारण परिवारों का संक्रमण एवं विघटन हो रहा है।

2. परिवार की परंपरागत धारणा में परिवर्तन :

वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में बढ़ती महंगाई के चलते मनुष्य में व्यक्तिवादी भावना बढ़ने लगी और अपने अर्जित अर्थ का परिवार के अन्य सदस्यों पर खर्च करने की भावना कम होने लगी, जिससे सदस्यों के बीच परस्पर स्नेह, कर्तव्य सौहार्द एवं सद्भावना के स्थान पर परस्पर द्वेष बढ़ने लगा। परिणामस्वरूप पारिवारिक संबंध सिमटने लगे और संयुक्त परिवार विघटित होकर, टुकडों–टुकडों में बिखरने लगा। ''जहाँ पहले पति–पत्नी और उनके बच्चों के अतिरिक्त विवाह तथा रक्त से संबंधित अन्य बहुत से व्यक्ति भी संयुक्त परिवार में रहते थे वहाँ अब परिवार का आकार पती–पत्नी और उनके अविवाहीत बच्चों तक ही सीमित रह गया है।''[5] इस तरह जो परिवार पहले सदस्यों की परस्पर आस्था और निष्ठा पर निर्भर रहते थे अब व्यक्तिवादी भावना, स्वार्थांधता एवं द्वेष के कारण विघटित हो रहे है। अतः औद्योगिक क्रांति, स्त्री शिक्षा और नविन पूँजीवादी व्यवस्था के कारण परिवार की परंपरागत धारणा और आकार में तेजी से परिवर्तन हो रहा है।

3. आधुनिक शिक्षा एवं पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव :

भारत में लंबे समय तक अंग्रेजों का शासन रहने के कारण हमारे विचारों, मनोवृत्तियों और जीवन दर्शन पर पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का व्यापक प्रभाव पड़ा है। फलस्वरूप रूढ़ियों का विरोध, व्यक्तिगत संपत्ति संचय, व्यक्तिगत कुशलता तथा व्यक्तिगत अधिकारों का आग्रह आदि को भी प्रोत्साहन मिला। परंतु यह व्यक्तिगत भावना संयुक्त परिवारों की स्थिरता के लिए घातक सिद्ध हुई। संयुक्त परिवार में सदस्य अधिक होने के कारण व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं कर पाते, अतः वे कुंठित जीवन जीने के लिए बाध्य होते है। इस प्रकार के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के कारण संयुक्त परिवार में दरारें पड़ने लगी। और एकल परिवारों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती गयी। आधुनिक शिक्षा का रूप आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी रहा है। डॉ.मंजु शर्मा के मतानुसार, ''आज की शिक्षा आदर्श की ओर न झुककर यथार्थ की ओर झुकती है। वह अपरिग्रह न सिखाकर विलासिता की ओर प्रेरित करती है। इस कारण आधुनिकता के नाम पर शारीरिक श्रम से घृणा की भावना बढ़ती है, फैशन और विलासिता के प्रति मोह जागता है, सामुहिक हित संपादन

की जगह स्वार्थ और व्यक्तिवाद को बढ़ावा मिलता है। इस कारण भी परिवार में विघटन उपस्थित हो जाता है।''[6] युवा पीढ़ी परिवार में बड़ों की शासक वृत्ति को अनुचित मानती है। आज के युग में व्यक्तियों पर सामाजिक दबाव क्रमशः घट रहा है। वैश्वीकरण से बीमा तथा सामाजिक सुरक्षा के अन्य उपाय निरंतर बढ़ रहे है। जिसके कारण नैतिक भावनाएँ खोखली हो रही है। इस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव, आधुनिक शिक्षा, आर्थिक स्वातंत्र्य एवं भौतिकवादी दृष्टिकोण ने आपसी संबंधों की घनिष्टता को खत्म कर दिया जिससे एकल परिवारों का प्रचलन बढ़ने लगा है।

4. स्त्री शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता :

आधुनिक शिक्षा प्राप्त स्त्रियों में सामाजिक जागरूकता बढ़ने से भी संयुक्त परिवारों की स्थिरता को काफी आघात पहुँचा है। शिक्षित स्त्री परिवार के शोषण और अमानवीय व्यवहार को अपना दुर्भाग्य समझकर चुप नहीं बैठती बल्कि, वह अपने अधिकारों की माँग कर रही है। परिणामतः वह समाज तथा परिवार में अपना दुय्यम स्थान नहीं लेना चाहती है। बेटी, बहन, पत्नी या माँ बनकर पुरूष के अधीन भी रहना नहीं चाहती बल्कि पुरूष के समान स्तर चाहती है। तो दूसरी ओर आज के माता–पिता भी अपनी शिक्षित बेटी के लिए एक अच्छे से अच्छे संयुक्त परिवार की अपेक्षा बिलकुल साधारण से एकल परिवार को अधिक उचित समझने लगे हैं। अतः इसप्रकार की मनोवृत्ति के कारण परंपरागत संयुक्त परिवारों का महत्व निरंतर कम हो रहा है।

नारी को आर्थिक क्षेत्र में स्वतंत्रता और सफलता प्राप्त हो रही है। परिणामतः उन्हें ऐसे संयुक्त परिवारों में रहना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता जहाँ उनके जीवन का कोई मूल्य ही नहीं होता। ''डॉ.सुनिता श्रीमाल के मतानुसार ''स्त्रियों के आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने से जहाँ परिवार आर्थिक दृष्टि से ऊँचे उठ रहे है वहाँ कहीं–कहीं पारिवारिक जड़े भी ढ़ीली पड़ जाती है। क्योंकि स्त्रियों में अपने ढंग से परिवार चलाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।.... वे अपने व्यक्तित्व को प्रबल बनाने की कोशिश कर रही है।.. .... नौकरी पेशा होने के कारण स्त्रियाँ परिवार के लिए समय कम दे पाती हैं। इससे घर में अव्यवस्था बढ़ने लगती है। वे यह अपेक्षा रखती है कि पति तथा घर के अन्य सदस्य भी उनके काम में मदद करें।''[7] इस अपेक्षा की पूर्ति से घर में सुख–शांति बनी रहती है अन्यथा असहयोग की भावना के कारण अन्य सदस्यों के साथ–साथ पति–पत्नी में भी तनाव उत्पन्न हो रहा है। जो परिवार विघटन का सूचक है। इस प्रकार स्त्रियों के आंतरिक विद्रोह के फलस्वरूप आज संयुक्त परिवार के साथ–साथ एकल परिवारों का भी संक्रमण हो रहा है।

5. विवाह : नया दृष्टिकोण :

वैश्वीकरण के इस दौर में समाज परिवर्तन के साथ–साथ विवाह में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। पहले ''विवाह का मुख्य लक्ष्य वैयक्तिक संतुष्टि, वैयक्तिक हितों व आकांक्षाओं की पूर्ति न होकर परिवार व समाज के प्रति एक सामाजिक कर्तव्य था।''[8] परंतु आज यह संकल्पना बदल रही है। विवाह में आत्मत्याग एवं समर्पण की अपेक्षा आत्म–संतुष्टि पर अधिक बल दिया जाने लगा है। अब विवाह का आधार धार्मिक न होकर एक समझौता बन गया है। यही कारण है कि पति–पत्नी थोड़ा सा भी सामंजस्य बनाए रखने के स्थान पर तलाक लेने पर अधिक जोर देते हैं जिससे परिवार का विघटन होता है। पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित परिवार अपने बच्चों को विवाह करने के लिए चुनाव की स्वतंत्रता देते हैं। परिणामस्वरूप यह युवा–पीढ़ी विवाह को अपना अधिकार मान रही है। अब उनके लिए विवाह एक पवित्र बंधन न होकर केवल एक प्रमाणपत्र रह गया है। जिसे जब चाहे तोड दे।

6. अतृप्त यौन संबंध तथा यौन स्वच्छंदता :

पारिवारिक संगठन में पति–पत्नी के बीच यौन संबंध महत्वपूर्ण होते हैं। कभी–कभी शारीरिक या मानसिक कारणों से पति–पत्नी एक–दूसरे की यौनेच्छा पूरी नहीं कर पाते तब दोनों में तनाव उत्पन्न होता है। उनके मस्तिष्क में एक प्रकार की झुँझलाहट भरी रहती है, जिससे वे एक–दूसरे से घृणा करने लगते हैं। यही घृणा बातों को बवंडर बना देती है और परिवार में द्वेष, क्लेश एवं तनाव बढ़ने लगता है। मनोवैज्ञानिक एलिस के मतानुसार, ''यौन संबंधों की शांति भंग होने पर विवाह का ढ़ाँचा ढ़हती हुई बालू पर खड़ा होता है।''[9] अतः पति–पत्नी के अतृप्त यौन संबंध परिवार को विघटित कर देते है। तो दूसरी ओर पारंपारिक नैतिक आदर्शों के स्थान पर विवाहपूर्व तथा विवाहोत्तर अवैध कामसंबंध भी बढ़ रहे है। पति–पत्नी के कामकाज की बढ़ती व्यस्तता के कारण दोनों की यौनेच्छा अतृप्त रहती है। वास्तव में स्त्री–पुरूष के यौन संबंधों के दो प्रमुख कारण है – संतानोत्पत्ति एवं आनंद प्राप्ति। परंतु विवाहपूर्व तथा विवाहोपरांत के काम–संबंधों का एक मात्र कारण, आनंद प्राप्ति ही होता है, जो उन्मुक्त यौन स्वच्छंदता को बढ़ावा देता है। परिणामतः परिवार संक्रमण की स्थिति से गुजरता है।

7. पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन :

भुमंडलीकरण से उत्पन्न परिवर्तनों का प्रभाव पारिवारिक संबंधों पर भी पड़ा है। बढ़ती महंगाई के चलते परिवार की आर्थिक विपन्नता को दूर करने के लिए सभी सदस्य यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी घर के बाहर जाकर नौकरी करने लगी हैं। परिवार का प्रत्येक सदस्य आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर आत्मनिर्भर बनने का प्रयास कर रहा है। परिणामस्वरूप व्यक्तिवाद की भावना बढ़ गई, जिसने आपसी संबंधों को भी परिवर्तित किया। डॉ.गोपाल कृष्ण अग्रवाल के मतानुसार, ''व्यक्तिवादिता और निजी संपत्ति की भावना ने परिवार के सदस्यों के बीच ही औपचारिक

संबंधों को विकसित किया है। संबंधों के इस नवीन रूप ने सदस्यों की परंपरागत स्थिति में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किये हैं। वास्तविकता तो यह है कि व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के सामने पारस्पारिक कर्तव्य की भावना धुँधली होती जा रही है। परिवार की नियंत्रण शक्ति बहुत कम हो गई है और इस प्रकार परिवारों की संरचना एक औपचारिक संगठन के रूप में बदल रही है।''[10] जो परिवार पहले बच्चों, बुढों, पागलों, विधवाओं, परित्यक्ताओं तथा अपाहिजों आदि मानसिक और शारीरिक दृष्टि से निर्बल लोगों की सुरक्षा का एक अद्वितीय स्थान था वह अब एक औपचारिक संगठन के रूप में पति–पत्नी तथा उनकी संतान तक ही सीमित हो गया है।

8. अर्थाभाव :

प्राचीन काल से आर्थिक क्रियाओं का प्रमुख स्थान परिवार रहा है। अर्थ का निर्माण तथा उसका उपभोग परिवार में ही होता था। ''विशेष रूप में सदस्यों के बीच श्रम विभाजन करना और जीविकोपार्जन के साधनों को निश्चित करना परिवार का दायित्व था। लेकिन व्यक्तिवादिता, निहित स्वार्थ और निजी संपत्ति की भावना के कारण आर्थिक क्रियाओं का चुनाव, उसके लाभ अथवा हानि का दायित्व अब व्यक्तिगत आधार पर ही निर्धारित होता है।''[11] अर्थात नयी अर्थव्यवस्था ने व्यक्ति को आर्थिक स्वावलंबन प्रदान किया है। परिणामस्वरूप अर्थ के अभाव में परिवार में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गई है। आवश्यकताओं की पूर्ति न होने से आपसी संबंधों में द्वेष तथा कटुता उत्पन्न होती है। ''डॉ.मंजु शर्मा के मतानुसार, ''परिवार के सभी सदस्य जब यथाशक्ति धनोपार्जन में असफल रहते हैं, कुछ सदस्य बेकार हो जाते हैं, इस कारण कुछ सदस्यों की उपेक्षा होने लगती है या खर्च आय से अधिक होने लगता है तब पारिवारिक विघटन होता है। दहेज, भोज, रोग, बीमारी, दुर्व्यसन आदि के कारण आर्थिक संकट और गहरा होता है और इसका परिणाम व्यंग्य, ताने, मारपीट, कलह, पलायन, तलाक, आत्महत्या, वधू–दाह, अपराध, वेश्यावृत्ति आदि होता है। ये सभी बातें पारिवारिक विघटन की सूचक है।''[12] अतः संसार में सभी अनर्थों की जड़ अर्थ को ही माना जाता है। आज के युग में पारिवारिक विघटन की जड़ भी अर्थ बन गया।

9. प्रतिकूल परिस्थितियाँ :

पारिवारिक कलह, नौकरी छूटना, लंबी बीमारी, दुर्व्यसन, चरित्रहीनता आदि ऐसी समस्याएँ है जो परिवार में तनाव की स्थिति उत्पन्न कर रही है, परिणामस्वरूप परिवार विघटित हो रहे है।

10. सामाजिक रूढ़ियाँ, अंधविश्वास एवं कुप्रथाएँ :

आज के वैज्ञानिक युग में भी समाज की घिसी–पिटी रूढ़ियाँ, जड़ संस्कार, अंधविश्वास, अंधश्रध्दाएँ तथा मृतप्राय मान्यताएँ पारिवारिक जीवन के लिए अभिशाप बन रही हैं। पाप–पुण्य के प्रति अंधविश्वास, स्त्रीभ्रुण हत्या, पुत्र–प्राप्ती का आग्रह, दहेज–प्रथा, अनमेल विवाह आदि कुप्रथाओं के कारण परिवार मानसिक यंत्रणांओं का शिकार हो रहा है। तो दुसरी ओर सांस्कृतिक मूल्यों में भी तेजी से परिवर्तन हो रहा है। मनुष्य को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए समाज द्वारा बनाई गई व्यवस्थाओं और नियमों को स्वीकार करना पड़ता है। परिणामस्वरूप उसे अनेक कष्टप्रद एवं दुःखद स्थितियों से गुजरना पड़ता है। इनसे छुटकारा पाने की चाहत परिवार में परिवर्तन एवं विघटन ला रही है।

निष्कर्षः

परिवार का समग्र अध्ययन करने के पश्चात् हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राष्ट्र एवं समाज की दृष्टि से परिवार का अनन्य साधारण महत्व होता हैं। परिवार के अलावा इन दोनों का अस्तित्व असंभव है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों एवं भौतिक आवश्यकताओं ने इसे जन्म दिया किंतु इसका प्रयोजन केवल कामंच्छा की पूर्ति या भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होकर संतानोत्पत्ति करके सृष्टिक्रम को बनाए रखाना प्रमुख उद्देश्य रहा है। अतः मृत्यु और अमरत्व इन दो विरोधी अवस्थाओं का सुंदर समन्वय परिवार में होता है। समाज की अन्य संस्थाओं से परिवार, मौलिक, सार्वभौमिक एवं सर्वोपरि है क्योंकि मनुष्य परिवार में ही जीवन, पवित्र ज्ञान, भोजन तथा संरक्षण प्राप्त करता है। राष्ट्र, समाज एवं मनुष्य जीवन को सुनियोजित तथा संगठित बनाने के लिए परिवार अनेक मौलिक एवं परंपरात कार्य करता है, जिसमें सामाजिक जीवन की कल्याणकारी भावना निहित होती है। सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान परिवार में कराया जाता है। वात्सल्य, प्रेम, स्नेह की भावना से परिवार के सदस्य एक–दुसरे से जुडे रहते हैं। प्रत्येक सदस्य अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करता हुआ अन्य सदस्यों को सुख एवं शांति पहुँचाने में स्वयं त्याग एवं बलिदान तक करने के लिए तैयार हो जाता है। धार्मिक उत्सवों को मनाकर परिवार अपने सदस्यों का मनोरंजन एवं संस्कृती का हस्तांतरण करता है।

भारतीय मनीषियों ने परिवार को बडे व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया है। इन्होंने परिवार से केवल पति–पत्नी तथा उनकी संतान का ही अर्थ ग्रहण नहीं किया बल्कि समस्त प्राणि–मात्र एवं छोटे –छोटे जीवधारियों को भी परिवार के सदस्य के रूप में स्वीकार कर 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को चरितार्थ किया है। एक आदर्श भारतीय गृहस्थ समस्त जीवधारियों के लिए अपने भोजन का कुछ अंश निकालकर जीव –यंज्ञ संपत्र करता है। इस तरह जीवन में सभी प्रकार के ऋणों से उऋण होने के लिए देव, ऋषी, पितृ, अतिथी, जीव इन पंच यज्ञों की पूर्ति करता है। इस प्रकार मनुष्य के पारिवारिक दायित्त्वों के विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है

कि गीता के निष्काम कर्मयोग का सर्वोत्तम स्थान परिवार है।

हिंदू संस्कृति एक ऐसे परिवार की कामना करती है, जिसमें किसी प्रकार का कलह न हो, परिवार आनंदमय हो, संतान बुध्दिमान हो, परिवार की स्त्रियाँ मधुरभाषिणी हो, स्त्री–पुरूष व्याभिचारी न हो, ईमानदारी से कमाया धन हो, अतिथी सत्कार हो, पूजा–अर्चा हो, साधुओं–सज्जनों का सत्संग हो, अतः ऐसा परिवार आदर्श परिवार है। जो धर्म, अर्थ, काम आदि प्रयोजनों की पूर्ति करें। 'धर्म' द्वारा मनुष्य सामाजिक दायित्व एवं कुल परंपरा का निर्वाह करता है। 'अर्थ' द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ दान–वृत्ति से साधु, सन्यासी, प्राणिमात्रों को संतुष्ट करता है। 'काम' द्वारा प्रजोत्पादन करके समाज एवं संस्कृती की निरंतरता को बनाए रखता है। सद्धर्म का पालन करके मनुष्य मोक्ष का अधिकारी हो सकता है। अतः मोक्ष हिंदुओं का अंतिम साध्य है। इसे स्पष्ट होता है की, संयुक्त परिवार, भारतीय संस्कृती की वह आधारशीला है जो व्यष्टिवाद के स्थान पर समष्टिवाद के आदर्शों की पुष्टी करती है।

परंतु भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न औद्योगीकरण, नगरीकरण, स्त्री–शिक्षा, धन–प्रचुरता और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के कारण भारतीय पारिवारिक भावना की व्यापकता संकुचित होती जा रही है। परिवार विपत्र और विघटित होते जा रहें हैं। एसी अवस्था में भी हमारे परंपरागत भारतीय संस्कार अर्थवाद, भौतिकवाद एवं अति भोगवृत्ति के लिए लालायित न होकर सात्विक जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करते हैं। यह निश्चित ही विश्व समाज के लिए शुभ संकेत है।

संदर्भ सूची :

1. डॉ.शंभूरत्न त्रिपाठी, डॉ.कैलाशनाथ शर्मा, पारिवारिक समाजशास्त्र, पृ.1।
2. हरिदत्त वेदालंकार, हिंदू परिवार मीमांसा, पृ.1।
3. डॉ.राजनाथ शर्मा, हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ.350।
4. डॉ.हेमेंद्रकुमार पानेरी, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास : मूल्य संक्रमण, पृ.162।
5. डॉ.गोपाल कृष्ण अग्रवाल, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ.314।
6. डॉ.मंजु शर्मा, साठोत्तरी महिला कहानीकार, पृ.214।
7. डॉ.सुनिता श्रीमाल, मोहन राकेश का कथा साहित्य : पारिवारिक संबंधों के विघटन की स्थितियाँ, पृ.178।
8. रोहीणी अग्रवाल, हिंदी उपन्यासों में कामकाजी नारी, पृ.130।
9. हेवलॉक एलिस, यौन मनोविज्ञान, पृ.217।
10. डॉ.गोपाल कृष्ण अग्रवाल, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ.315।
11. वही, पृ.316।
12. डॉ.मंजु शर्मा, साठोत्तरी महिला कहानीकार, पृ. 213–214.